* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८४, मास--पद्मनाम २, वार--कारणोदशायी, वृहस्पतिवार, ३१ भाद्र, सम्वत् २०२७, १७ अगस्त १९७० | संख्या ४

सितम्बर १९७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीदेवकीदेवीकृतं श्रीवासुदेवस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।३।२४-३१)

रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥२४॥

श्रीदेवकीदेवी कहने लगीं—हे देव ! वेद सभी जिन अव्यक्त वस्तुको जगतकारण, ब्रह्म, ज्योतिर्मय, मायारहित, निर्विकार, निर्विशेष, केवलस्वरूप कहकर वर्णना करते हैं, आप साक्षात् वे ही बुद्धि आदिके प्रकाशक श्रीविष्णु हैं। अर्थात् निराकार निर्विशेष ज्योतिर्मय ब्रह्म विष्णुसे पृथक् नहीं हैं, परन्तु वे उनकी अङ्गकान्ति मात्र हैं ॥२४॥

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥२५॥

महाप्रलयमें, जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु, दो परार्धका समय समाप्त हो जाता है, उस समय कालशक्तिके प्रभावसे चराचर लोक विलीन होने पर पञ्चमहाभूत अपनी सूक्ष्म-तन्मात्राओंमें लीन हो जाते हैं और व्यक्त पदार्थ सभी अव्यक्त प्रकृतिमें लीन होने पर एक-मात्र आप ही शेष रह जाते हैं; इसलिए आपको 'शेष' भी कहा जाता है ॥२५॥

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥२६॥

हे प्रकृतिके एकमात्र सहायक ! यह सारा विश्व निमेषसे लेकर वर्ष तक अनेक विभागोंमें विभक्त कालकी प्रेरणासे ही चल रहा है। उस सर्वसंहारक कालको सभी वेद विष्णुस्वरूप तुम्हारी लीलामात्र कहकर वर्णना करते हैं। आप सभी प्राणियोंके ईश्वर और समस्त प्रकारके मंगलोंके आधार हैं। मैं आपकी शरण लेती हूँ ॥२६॥

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन् लोकान् सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥२७॥

इस मर्त्यलोकके व्यक्ति मृत्युरूप सर्पके भयसे भयभीत हैं और ब्रह्मादितक भी सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें आश्रय पानेके लिए यहाँ वहाँ दौड़नेपर भी निर्भय नहीं हो सकते। इस समय वे सभी बड़े भाग्यसे महान् व्यक्तियोंकी कृपाद्वारा प्राप्त भक्तिके प्रभावसे आपके पादपद्मों-का आश्रय प्राप्त कर स्वस्थ रूपसे अवस्थान कर रहे हैं । इस मर्त्यलोकसे मृत्यु आपके भयसे दूर भाग गयी है ॥२७॥

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि ।
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥२८॥

आप अपने सेवकोंकी यातनाओंको दूर कर उनको अभय प्रदान करते हैं । अतएव उस भयङ्कर स्वभावपरायण कंसके भयसे डरे हुए हमारी रक्षा कीजिए । आपके ध्यानगम्य दिव्य चतुर्भुजधारी विष्णुरूपको केवल मांस-मज्जामय देहके प्रति दृष्टि रखनेवाले, देहाभिमानी, अज्ञ नसे परिपूर्ण, अयोग्य व्यक्तियोंके सामने प्रकट मत कीजिए ॥२८॥

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥२९॥

हे मधुसूदन ! चञ्चलमति मैं आपके लिए कंस-भयसे उद्विग्न हो रही हूँ। अतएव मेरे गर्भसे आपके जन्मग्रहणकी बात जिससे पापी कंस न जान सके, इसके लिए उपाय कीजिए ॥२९॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
शङ्खचक्र गदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥

हे विश्वात्मन् ! आपका यह रूप अलौकिक है । आप शंख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुज रूप छिपा लिजिए ॥३०॥

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ।
बिभर्त्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥३१॥

आप इस प्रकारके अपने अलौकिक रूपका संवरण कीजिए क्योंकि आप परमपुरुष हैं; प्रलयकालमें चराचरात्मक ब्रह्माण्डको आप अपने शरीरमें वैसे ही स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं जैसे कि कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको । वही ब्रह्माण्ड-विग्रह विष्णुरूपी आप आज मेरे गर्भमें कृपा कर प्रवेश किये थे । अहो ! यह मनुष्यलोकके व्यक्तियोंके लिए असंभव होनेके कारण यह हमारी नितान्त विडम्बना मात्र है ॥३१॥

॥ इति श्रीदेवकीदेवीकृतं श्रीवासुदेवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ इति श्रीदेवकीदेवीकृत श्रीवासुदेवस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

●

प्रेम-पुकार

तुम न चाहते हो मुझे दिलसे,
यह तो न किसी को बताया करो ।
विरहिनी कौं मन तरसाया कर,
तड़फाया कर भी दया करो ॥

मनमें बसकर तुम मनमोहन,
मनकी श्रवण तो कभी करो ।
मस्त रहूँ प्रेमसे मनमोहन,
कलीको यूँ न मुरझाया करो ॥

विरही मन की पूछो मत व्यथा,
यह कथा कह शान्ति मिलेगी नहीं ।
दुःख दूना बढ़ेगा सदाके लिए,
यह दिलकी आग बुझेगी नहीं ॥

यदि प्रेम सुधा बरसाओगे तुम,
तो भी यह ज्वाला रुकेगी नहीं ।
प्रेम की भी यह सीमा असीम,
तर जाने पर भी मिटेगी नहीं ॥

—कुमारी सरोज "गुप्तेश"

मानव जातिका परम कर्त्तव्य

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीकृष्ण-संकीर्त्तनको ही मानव जातिका परम कर्त्तव्य बतलाया है। यहीं उनकी महावदान्यता है। श्रेष्ठ देवताओंकी बात दूर रहे, भक्तश्रेष्ठ उद्धवादियोंके लिए भी दुष्प्राप्य, नारदादिके भी अगोचर, परम प्रयोजनरूप श्रीकृष्ण-प्रेम श्रीकृष्णसंकीर्त्तन द्वारा ही बद्ध जीव प्राप्त कर सकते हैं।

कोई कोई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि 'कृष्ण' ऐतिहासिक युगके या महाभारत युगके जनैक व्यक्तिविशेष थे, जो पाँच हजार वर्ष पहले जीवित थे। कोई कोई कृष्णको केवल विष्णु भगवानका एक अवतारविशेष मानते हैं, और कोई तत्त्वज्ञ व्यक्ति कृष्णको स्वयं अवतारी पुरुष—जिनसे विष्णु आदि अवतारोंका आविर्भाव होता है, ऐसा जानते हैं। कोई और व्यक्ति 'कृष्ण' को कवियों द्वारा कल्पित एक शब्दविशेष समझते हैं। कोई दूसरे व्यक्ति कृष्ण-भजन करते करते आखिरमें कृष्णका विनाश कर उद्धवव्याध-हुआ जा सकता है, उनके लालिमायुक्त सुन्दरचरणोंको बाणोंद्वारा विद्ध किया जा सकता है—ऐसी दुर्बुद्धिका पोषण करते हैं। कृष्ण-पूजा करते करते उद्धव-व्याध हो जाना, कृष्णका विनाश कर अन्तमें निराकार, निर्विशेष गति प्राप्त करना, आदि विचार अक्षजवादी मनोधर्मी व्यक्तियोंकी महाभयङ्कर अपराधमयी चेष्टाएँ मात्र हैं। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुके विचारसे ऐसा विचार श्रीकृष्णके सम्बन्धमें करना सर्वदा अनुचित एवं अन्याय है। पञ्चरात्रग्रन्थ श्रीब्रह्मसंहितासे उन्होंने स्पष्ट दिखलाया है—

"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥"

किसीका कहना है कि प्रकृति ही जगत-की कारणस्वरूपा है। कोई कहते हैं कि ब्रह्म ही जगतके कारण हैं। किन्तु इन सभी कारणोंके भी कारण अर्थात् प्रकृतिके कारण, ब्रह्मके कारण, और सभी कारणोंके भी कारण वे ही श्रीकृष्णके नित्य वर्त्तमान अभय, सुशीतल पादपद्म सबके मूल हैं। उनका श्रीचरण ब्रह्मका उत्पत्ति-स्थान है, नास्तिकता का समूल ध्वंस करनेवाला है, देवताओं और मनुष्योंके ज्ञानका परम कारण है, उनको स्वयं विलासमूर्त्ति नारायणका भी कारण है। जनैक ईश्वरकृष्ण नामक व्यक्ति या निरीश्वर कपिलके विचारसे जिस प्रकृतिको ही जगतका कारण बतलाया गया है, अथवा वेदान्त-सूत्रके विचारसे जिस ब्रह्मको सर्वकारण बतलाया गया है, उन सभी कारणोंके भी कारण एकमात्र श्रीकृष्णपादपद्म हैं।

जैव-धारणाकी ब्रह्म-प्रतीति भगवद्भक्तों के भक्तिराज्यमें अग्रसर होनेके मार्गमें एक आंशिक प्रतीतिके रूपमें अनुभूत होती है। उस ब्रह्मके भी कारण श्रीकृष्ण ही हैं—

"ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुलं श्यामसुन्दरम् ।"

मूलवस्तुके स्वभावसे जो एक महाज्योर्ति-मय अङ्गकान्ति प्रस्फुटित हो रही है, ब्रह्म वही आभासरूप प्रतीति मात्र है। ब्रह्म वस्तु-प्रतीतिसे भेदाभेदप्रकाश समष्टि वस्तुकी—पूर्ण प्रतीतिमें बाधक स्वरूपमात्र है। उस ब्रह्मके भी कारण श्रीकृष्ण हैं।

अभ्युदयवादी होकर प्रत्येक कार्यके कारण-निर्णयकी जो चेष्टा की जाती है, वह वर्त्तमान समयकी विद्वत्ता मानी जाने पर भी, वह सर्वप्रधान मूर्खता मात्र ही है। ऐसा ब्रह्मज्ञान जैवज्ञानका प्रतिपाद्य है। किन्तु श्रीगौरसुन्दरका कहना है—श्रीकृष्ण सर्वकारण-कारण हैं, वे नित्य सद्वस्तु हैं, वे सच्चिदानन्द वस्तु हैं अर्थात् वे कालाधीन असत्तत्त्व नहीं हैं, बल्कि काल उनके अधीन है। किसी किसी व्यक्तिकी यह धारणा है कि अचेतन वस्तुसे ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रकट हुए हैं या सदानन्द योगीन्द्रके मतानुसार ईश्वर एक कल्पना मात्र है। श्रीकृष्ण इस प्रकारके असद्वस्तु मात्र नहीं है। वे कालविचारसे अनादि हैं। ब्रह्मप्रतीतिकी धारणा उनके पश्चात् की धारणा है। उनका आदि और कोई नहीं है।

वे गोविन्द हैं; 'गो' कहनेसे पृथिवी, इन्द्रिय, विद्या, गाय आदिको समझा जाता है। इन सभीके जो मूल-पालनकर्त्ता हैं, वे ही गोविन्द हैं। सविशिष्ट सर्वचित्तगुहामें निवासकारी परमात्मा और निर्विशिष्ट चिदाकाश ब्रह्मका भी जो पालन करते हैं, वे गोविन्द हैं।

कुछ मनुष्योंकी बुद्धिको ब्रह्म-विचार, परमात्म-विचार, मनुष्योंके हितकारी ग्राम्य-देवता-विचार आदिने स्तब्ध कर रखा है अर्थात् कुछ व्यक्ति इन सभीको ही परमतत्त्व समझते हैं। स्वयं परमेश्वर श्रीकृष्ण जैवज्ञानके ऐसे विचारमत परमतत्त्व नहीं हैं। वे सदा ही परिपूर्ण सद्वस्तु हैं, वे बद्धजीवोंके ज्ञानातीत नित्य अस्तित्वको विशेषरूपसे ग्रहण कर वर्त्तमान हैं। वे निःशक्तिक ब्रह्ममात्र नहीं हैं। सभी वैचित्र्य भावोंका अस्तित्व पूर्णमात्रामें उनमें ही अवस्थित है। भावाभाव रूप भाव उनमें ही अवस्थित है। सत् कहनेसे उन्हें ही समझा जाता है।

वे चित् हैं। अज्ञानी जीव अपनी क्षुद्र ससीम बुद्धिद्वारा मूर्खतासे जिन्हें शेषप्राप्य समझते हैं, वह अचित् है, वहाँ भी चेतन आवृत होकर वर्त्तमान है। शुद्ध चिदनुभूतिके आनन्दबाधक वस्तु ही असत् है और नित्यकाल आनन्दमय वस्तु ही सत् है। अज्ञान मूर्खता या अभिज्ञानवादीके (Empiricist के या केवल अनुभवपर निर्भरवादीके) विचारके द्वारा गम्य है—ऐसी बात से ही Impersonality या निर्विशेषवाद उपस्थित होता है। किन्तु अद्वय तत्त्ववस्तु भगवान श्रीकृष्ण ऐसे मापे जाने योग्य वस्तु नहीं हैं। उन्हें मापा नहीं जा सकता, क्योंकि वे मायिक वस्तु नहीं हैं। जिन्हें मापना असंभव है, वे अद्वयतत्त्व ही असम्यक् निर्विशेष प्रतीतिमें ब्रह्म, आंशिक प्रतीतिमें परमात्मा, पूर्ण-प्रतीतिमें वैकुण्ठ या श्रीभगवान् हैं। अतएव श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—जो कुछ मापा जा सकें, उसका अनुशीलन मत करो, वह भोगमात्र है। ब्रह्म, परमात्मा और भगवद्-वस्तुकी आलोचना करो—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(भा० १।२।११)

एकमात्र भक्तोंके प्यारे भगवान् श्रीहरिका नित्य निरन्तर एकमनसे श्रवण, कीर्त्तन-ध्यान और पूजा करो—

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यशः॥

(भा० १।२।१४)

जिन सभी वस्तुओंको मापा जा सके, उन वस्तुओंको छोड़कर मापनेके लिए कई

वस्तुएँ बाकी रह जाती हैं । अतएव अभिज्ञानवादी तत्त्ववस्तुको माप लेने जाकर खण्ड प्रतीतिमें आबद्ध रह जाते हैं—वे लोग वास्तव वस्तुके निकट पहुँच नहीं सकते । जिन्होंने सत्, चित्, और आनन्द विशेषरूपसे ग्रहण किया है, वे ही श्रीकृष्ण हैं—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥
(भा० १।२।६)

यदि कोई अपनी आत्माकी सुप्रसन्नता चाहते हैं, यदि कोई यथार्थ परमात्मस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप और भगवत्स्वरूपकी उपलब्धि कर भगवानका साक्षात्कार प्राप्त कर भगवान के निकट गमन कर उनकी नित्य सेवा करने की इच्छा रखते हैं, तो वे भगवद्वस्तुका अनुशीलन करें ।

हमारे संकीर्ण जैवज्ञानके वशीभूत होकर हम लोग कभी त्याग-धर्ममें, कभी ग्रहण-धर्ममें, बकोधर्ममें या मनोधर्ममें व्यस्त हो जाते हैं । जगतके हजारों व्यक्तियोंके हजारों मत हैं, प्रत्येक व्यक्तिका एक एक नया मत है । हम लोग इस जगतके 'प्रत्येक' द्वारा वंचित हो सकते हैं । किन्तु स्वयंप्रकाश वस्तु यदि कृपापूर्वक स्वयं प्रकाशित होकर हमारे हृदयमें उनका स्वरूप प्रकाशित करते हैं, तो हमारे वंचित होनेकी संभावना नहीं है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥
(कठोपनिषद् १।२३)

भगवान् जब स्वयं प्रकट हुए थे, जब श्रीगौरसुन्दरने अपनी प्रकटलीला दिखलाई थी, उस समय उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदास ठाकुरद्वारा श्रीनाम-प्रचार करवाया था । श्रीचैतन्यदेवकी वाणी बंगालके या भारतवर्षके लोगोंको या चार सौ वर्ष पहलेके कुछ लोगोंको प्रतारित करनेवाली वाणी मात्र नहीं है । श्रीचैतन्यदेवकी वाणी नित्य चेतनायुक्त वाणी है । चेतनारहित व्यक्तियोंपर कृपा करनेवाली वाणी है । पारस, चीन, यूरोप, कामस्काट्का, मंगल या बृहस्पति ग्रहके लोगोंके लिए यह उपयोगी नहीं है—ऐसा बहुतसे व्यक्ति सोच सकते हैं । श्रीचैतन्यदेवके बारेमें हमारी जो परिच्छिन्न धारणा है, उस मनःकल्पित धारणाके वशीभूत न होकर यदि हम उनके निकट जाय, यदि शरणागतचित्तसे उनके ऐकान्तिक दासोंके पादपद्मोंमें आश्रय लेकर उनकी बात जाननेका प्रयास करते हैं, तो हम लोग अवश्य ही यह उपलब्धि कर सकते हैं कि प्रत्येक देशके धर्मजगतमें जिसप्रकार प्रचारक लोगोंने दुकानदारी कर अपने पण्यद्रव्यकी श्रेष्ठता बतलाकर लोगोंकी प्रतारणा की है, वैसे वञ्चनाकारी प्रचारकोंमें वे नहीं हैं । वे लोक-प्रतारक समन्वयवादी नहीं हैं । उन्होंने जीवोंको सबसे अधिक यथार्थ मंगलकी प्राप्ति जिसके द्वारा हो, उसी बातका ही उपदेश दिया है । जगतके सभी जातिके व्यक्ति जिन सभी बातों को श्रेष्ठ समझते हैं, श्रीमन्महाप्रभुकी बात सुनने पर वे सभी बातें अत्यन्त निःसार जान पड़ेंगी । जगतकी क्षुद्र-क्षुद्र साधनप्रणालियोंको मनोधर्मी व्यक्ति उन्नत कहकर उन्हें और भी फुलाकर जो वञ्चनाप्रणाली प्रचार करते हैं, ऐसी वञ्चना करनेके लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु नहीं आये थे । जगतके जितने भी बड़े सम्प्रदाय क्यों न हों, जितना बड़ा श्रेष्ठ साधन क्यों न हो, या होगा, वह अत्यन्त दुर्बल और कपटतापूर्ण है, यह उन्होंने श्रीमद्भागवतके

माध्यमसे जगतमें प्रकाश किया है । उन्होंने यह भी दिखलाया है कि श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन ही सारे जगतके एकमात्र मंगलका परम उपाय है । किन्तु कृष्णका संकीर्तन होना चाहिए, केवल भोगकी धारणाके अन्तर्गत कृष्ण नहीं हैं—जीवोंका इन्द्रियतर्पण ही कृष्णकीर्त्तन नहीं है । मायाके कीर्त्तनको यदि हम लोग श्रीकृष्णकीर्त्तन समझनेका भ्रम कर बैठें, शुक्ति (सीप) में यदि चाँदीका भ्रम हो, आभिधानिक शब्द या अक्षरको यदि हम लोग श्रीनाम समझें, तो वंचित होंगे । श्रीकृष्णनाम साक्षात् अभिन्न श्रीकृष्ण हैं । श्रीकृष्णाक्षर साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं । "बहुभिर्मिलित्वा यत्कीर्त्तनं तदेव संकीर्त्तनम्" अर्थात् बहुतसे व्यक्ति एकत्र होकर जो कीर्त्तन करें, वही संकीर्तन कहलाता है । किन्तु इसे कोई 'चूहेकी गलेबाजी' न समझें । कृष्णसंकीर्तन ऐसा कीर्तन नहीं है, मनुष्योंका कल्पित कीर्त्तन नहीं है, जड़भोगमय कीर्त्तन नहीं है, रोगको दूर करनेका कीर्तन नहीं है, सामान्य सायुज्य मुक्ति प्राप्त करनेका कीर्त्तन नहीं है ।

श्रीकृष्णकीर्तन होने पर निर्विशेषवादीकी दुर्बुद्धि दूर होकर, सायनमाधवकी नास्तिकता दूर होकर उनकी यथार्थ, परम मुक्ति हो सकती है । श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती उसके साक्षी हैं । श्रीकृष्णकीर्त्तनसे विषयविमूढ़ व्यक्ति यथार्थ मुक्ति प्राप्त कर सकता है । प्रतापरुद्र आदि इसके प्रमाण हैं । श्रीकृष्ण कीर्तनके द्वारा वृक्ष, पत्थर, पशु, पक्षी, व्याघ्र (बाघ), हाथी, सूअर, स्त्री, पुरुष—सभी जीवों की ही परम मुक्ति हो सकती है । झारिखण्डके वृक्षलता-पशु-पक्षी आदि इसके उदाहरण हैं । केवल श्रीकृष्णकीर्त्तन नहीं होनेके कारण ही जीवोंकी यथार्थ मुक्ति नहीं हो रही है । हमारे श्रीश्रीमन्महाप्रभु सभी जीवोंके मंगलके लिए (पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-गुल्म-लता आदि प्रत्येक जातिके मंगलके लिए) इस जगतमें आविर्भूत हुए थे ।

पाल केरस्, बेन, हेगेल, केन्ट आदि पाश्चात्य मनीषी हैं, जोनोके शिष्य दार्शनिक लोग भी मनीषी हैं, हमारे देशके षड्दर्शनके प्रणेता लोग भी मनीषी थे, चार्वाक, बौद्ध और शांकर वैदान्तिक लोग भी मनीषी हैं । जगतमें इन सभी हजारों मनीषियोंने हजारों बातोंका प्रचार किया है; किन्तु यदि हम बुद्धिमान हों, यदि हम वास्तव सत्यके उपासक हों, यदि हम लोग कपटताको सत्यके रूपमें ग्रहण नहीं करें, यदि हम सत्यस्वरूप भगवान के शरणापन्न हों, तो वास्तव सत्य वस्तु हमसे बहुत दूर रहने पर भी, हजारों व्यक्ति उनकी विद्वत्ता या गवेषणा द्वारा हमारे निकट हजारों चित्तविनोदकारिणी बातें बतलाने पर भी उन सभी बातोंका अनादर कर हम लोग अपने मंगलके लिए वास्तव सत्यका अनुसन्धान अवश्य ही करेंगे । श्रीचैतन्यदेवने श्रीमद्-भागवतके द्वारा इस परमवास्तव, कपटता-शून्य, निर्मत्सर साधुओंका सेव्य, सत्यकथाको प्रकाशित किया है । फालतू बातोंकी आव-श्यकता नहीं है, हजारों दुकानदार अपने अपने सामानके लिए canvass (प्रचार) कर रहे हैं । यदि उनकी मनोहारिणी बातोंमें भूलकर उनके दुकानमें जाय, तो हम वंचित होंगे । किन्तु यदि हमारे अचेतन हृदयमें श्रीचैतन्यदेव स्वयं ही उदित हों, यदि श्रीचैतन्य-हरि हमारी हृदय-गुफामें स्फूर्त्ति प्राप्त हों, स्वयंप्रकाश वस्तु यदि हमारे निकट स्वयं ही अपनेको प्रकाशित करें, तो हम लोग इन सभी दुकानदारोंका अनायास ही य

सम्पूर्ण रूपसे बहिष्कार (summarily reject) कर सकते हैं।

वे चेतनमय वस्तु स्फटिकस्तम्भसे निर्मुक्त होकर प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुका निर्विशेषवाद समूल ध्वंस किया। बलि महाराजका सर्वस्व ग्रहण किया, शुक्राचार्यके कर्मकाण्डका भी ध्वंस किया था। उन्होंने ही आत्माका धर्म बतला दिया है। श्रीमद्-भागवतके "स वै पुंसां परोधर्मो" श्लोककी बात दूसरे किसी भी ग्रन्थमें है कि नहीं, कही नहीं जा सकती। इस श्लोकका उदारतापूर्वक विचार करनेपर जगतकी सभी क्षुद्र-क्षुद्र साम्प्रदायिकता या लोकवञ्चनाकारी क्षुद्र-समन्वयवाद स्पृहा नष्ट हो जायगी।

(क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

—०—

मुरलीका सर्वचित्ताकर्षकत्व

सुनिए, सुनिए हो धरि ध्यान, सुधा रस मुरली बाजै ।
स्याम अधर पै बैठि विराजति, सप्त सुरन मिलि साजै ॥
बिसरी सुधि बुधि गति सबहिनि, सुनि बेनु मधुर कल गान ।
मन गति पंगु भई ब्रज जुबती, गंधर्व मोह तान ॥
खग मृग थके फलनि तृन तजि कै, बछरा पियत न छीर ।
सिद्ध समाधि थके चतुरानन लोचन मोचत नीर ॥
महादेवकी नारी छूटी, अति ह्वै रहे अचेत ।
ध्यान टर्‌यौ, धुनि सौ मन लाग्यौ, सुर मुनि भए सचेत ॥
जमुना उलटि बही अति व्याकुल, मीन भए बलहीन ।
पसु पच्छी सब थकित भए हैं, रहे इकटक लौलीन ॥
इन्द्रादिक सनकादिक, नारद, सारद, सुनि आवेस ।
घोष तरुनि आतुर उठि धाई, तजि पति पुत्र अदेस ॥
श्रीबृन्दाबन कुंज कुंज प्रति अति बिलास आनन्द ।
अनुरागी प्रिय प्यारी के सँग रास रचैं सानन्द ॥
तिहुं भुवन भरि नाद प्रकास्यौ, गगन धरनि पाताल ।
थकित भए तारागन सुनिकै, चँद भयौ बेहाल ॥
नटवर भेष धरैं नँदनंदन निरखि बिबस भयौ काम ।
उर बनमाल चरन पंकज लौं, नील जलद तन स्याम ॥
जटित जराव मकर कुंडल छबि, पीत बसन सोभाइ ।
बृन्दाबन रस रास माधुरी निरखि सूर बलि जाइ ॥

(सूरदासजी)

प्रश्नोत्तर

(अनर्थ-निवृत्ति)

१—अनर्थ क्या है ?

"संसारी लोगोंका मायाभोगरूप पौरुष ही उनका अनर्थ है।" —कृ० सं ६।१५

२—अनर्थ कितने प्रकारके हैं और क्या-क्या हैं ?

"अनर्थ चार प्रकारके हैं—स्वरूप-भ्रम, असत्तृष्णा, अपराध और हृदय-दौर्बल्य।"

३—चारों अनर्थोंका स्वरूप क्या है ? किस प्रकार अनर्थ-निवृत्ति हो सकती है ?

"मैं शुद्ध, चित्कण, और कृष्णदास हूँ—यह भूलकर बद्धजीव स्व-स्वरूपसे विच्युत हो गए हैं, अपने स्व-स्वरूपकी अप्राप्ति ही जीवों का प्रथम अनर्थ है। जड़ वस्तुओंमें अहं-ममादि बुद्धि कर असत विषय-सुखादिकी तृष्णाको ही असत्तृष्णा कहते हैं। असत्तृष्णा तीन प्रकारकी है—पुत्रैषणा, वित्तैषणा और स्वर्गैषणा। अपराध (नाम अपराध) दस प्रकारका है। हृदय-दौर्बल्यसे ही शोकादि की उत्पत्ति होती है। ये चारों अनर्थ अविद्या ग्रस्त बद्ध जीवोंके नैसर्गिक फल हैं। साधु सङ्गमें रहकर शुद्ध कृष्णानुशीलनके द्वारा ये सभी अनर्थ क्रमशः दूर होते हैं।"

—जै० ध० १७ वाँ अ०

४—क्षुद्र अनर्थ क्या बृहत् नामसूर्यको या चेतनको ढक सकता है ?

"बद्ध जीवोंके अनर्थ मेघकी तरह नाम-सूर्यको ढककर अन्धकार फैलाते हैं। वस्तुतः बद्ध जीवोंके आंखोंको ही ढकते हैं। नाम-सूर्य बृहत् हैं, अतएव उन्हें ढक नहीं सकते।"

—'नामाभास विचार' ह० चि०

५—जीवोंकी भगवद्-उन्मुखता क्यों नहीं होती ?

"जब तक जीवोंके संसार-सुखकी आशा नहीं क्षयोन्मुख होती तब तक किसी भी प्रकारसे उनमें भगवदुन्मुखता उदित नहीं होती।"

—'साधन' स० तो० ११।५

६—कितने समयतक विषयतृष्णा रहती है ?

"जब तक अप्राकृत-तत्व में शुद्ध रतिका उदय नहीं होता, तब तक विषयतृष्णा सम्पूर्ण रूपसे नष्ट नहीं होती। अवसर पानेसे ही विषयोंके प्रति इन्द्रियाँ आकर्षित होने लगती हैं।"

'असत्सङ्ग' स० तो० ११।६

७—हृदय-दौर्बल्यके रहने से क्या हानि है ?

"हृदय-दौर्बल्यके कारण कई समय भजन-प्रतिकूल क्रिया या सङ्गका त्याग किया नहीं जा सकता। असत् कार्योंसे या असत्सङ्गद्वारा भक्तिदेवीके प्रति अपराधका उदय होता है। उससे भजन अशुद्ध हो जाता है। अतएव हृदयकी दुर्बलताका परित्याग कर भजनमें उत्साह-प्रकाश और निरपेक्षता की रक्षा करने पर ही विशुद्ध भजनमें सहायता मिलती है।"

—'विशुद्ध भजन' स० तो० ११।७

८—हृदय-दुर्बलतासे क्या क्या अनर्थ उत्पन्न होते हैं ?

"आलस्य और इतर विषयोंके प्रति वशीभूत होना, शोकादिद्वारा चित्तविभ्रम, कुतर्कके द्वारा शुद्धभक्तिसे विचलित हो जाना, समस्त जीवनीशक्तिको कृष्णानुशीलन में अर्पण करनेमें कृपणता, जाति-धन-विद्या-रूप-बल आदिके अभिमानसे दैन्य-स्वभाव ग्रहण न करना, अधर्म-उत्पात या असत् उपदेशोंद्वारा विचलित होना, कुसंस्कारको दूर करनेमें अयत्न, क्रोध-मोह-मात्सर्य-असहिष्णुताके वशमें पड़कर दयाका परित्याग, प्रतिष्ठाशा और दृढ़ताके द्वारा वृथा वैष्णवाभिमान, कनक-कामिनी और इन्द्रिय-सुखाभिलाषासे दूसरे जीवोंके प्रति अत्याचार आदि—ये सभी कार्य ही हृदयकी दुर्बलतासे उत्पन्न होते हैं।'

—'दशमूल-निर्यास' स० तो०

९—असत्तृष्णा क्या है ?

"जड़देहके प्रति आसक्त होकर जो विषय-पिपासा होती है, वही असत्तृष्णा है। स्वर्गसुख, इन्द्रियसुख, धन-जन सुख—आदि सभी ही असत्तृष्णाएँ हैं। अपना आत्म-स्वरूप जितने परिमाणमें निर्मल होगा, अन्यान्य वस्तुओंमें वैराग्य भी उसी परिमाणमें होगा। साथ ही साथ नामापराध-त्यागमें विशेष यत्न होना आवश्यक है। नामापराध परित्यागपूर्वक नाम करते करते प्रेमधन अत्यन्त शीघ्र ही प्राप्त होता है।"

—'दशमूल-निर्यास', स० तो० ११।६

१०—स्वतंत्र-विचारद्वारा क्या हरि भजन नहीं होता ?

"अपने विचारके ऊपर निर्भर रहनेसे अमिश्रा शुद्धा भक्ति उस व्यक्तिके हृदयमें कदापि नहीं उदित होगी।"

—'तत्तत्कर्म-प्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

११—अनर्थोंके कारण क्या क्या उत्पात उत्पन्न होते हैं ?

"अनर्थोंके कारण असत्सङ्ग, कुटिनाटि, बहिर्मुखापेक्षा आदि नाना प्रकारके उत्पातोंका उदय होता है। ये सभी उत्पात विशुद्ध भजनमें अग्रसर होने नहीं देते। असत्सङ्गमें नाना प्रकारकी असदालोचना होती है। उससे असत् विषयोंमें आसक्ति उत्पन्न होकर विशुद्ध भजनमें प्रबल रूपसे बाधाएँ उपस्थित होती हैं।"

—'विशुद्ध भजन', स० तो० ११।७

१२—प्रेमसम्बन्धरहित दीर्घ जीवन और स्वस्थ शरीर क्या श्लाघनीय नहीं हैं ?

"यदि प्रेमसम्बन्ध न हो, तो उस दीर्घ-जीवन और रोग-शून्यताके द्वारा केवल अनर्थोंकी ही उत्पत्ति होती है।"

—प्रे० प्र० २ रा प०

१३—पूतना किस आदर्शकी मूर्त्ति है ?

"पूतना भुक्ति-मुक्तिकी शिक्षा देनेवाली कपट-गुरु है। भुक्ति-मुक्तिप्रिय कपट साधु लोग भी पूतना-तत्व हैं। शुद्ध भक्तके प्रति कृपा कर बालकृष्ण अपने नव-उदित भाव की रक्षा करनेके लिए पूतना-वध करते हैं।"

—चै० शि० ६।६

१४—शकट-भन्जन-लीलाकी शिक्षाद्वारा साधक कौनसा अनर्थ दूर करेंगे ?

"शकटासुर—पूर्व और आधुनिक असत् संस्कार, जड़ता और अभिमानजनित भारवाहित्वका रूप है। बालकृष्ण-भाव शकटका भन्जन कर उस अनर्थको दूर करते हैं।"

—चै० शि० ६।६

१५—तृणावर्त्त किस किस अनर्थका आदर्श है ?

"तृणावर्त्त वृथा पण्डिताभिमान,उसकेद्वारा उत्पन्न कुतर्क,शुष्क युक्ति या शुष्क न्यायादि और तत्प्रिय लोगोंके सङ्गका स्वरूप है। बाल कृष्ण-भाव साधकोंकी दीनतासे कृपा-विष्ट होकर उस तृणावर्त्त को मारकर भजन का कण्टक दूर करते हैं।"

—चै० शि० ६।६

१६—यमलार्जुन-भञ्जन लीलामें साधकों-के लिए कौनसे अनर्थ दूर करने के लिए शिक्षा है ?

"यमलार्जुन-भञ्जन—श्रीमदसे आभि-जात्य (ऊँचे कुलमें उत्पन्न होनेके) दोष-के द्वारा जो अभिमान होता है, उसमें भी भूतहिंसा, स्त्रीसङ्ग, मद्य-मांसका सेवन आदि द्वारा उत्पन्न मत्तताका उदय होकर जिह्वा-लाम्पट्य और निर्दयताके द्वारा उत्पन्न भूत-हिंसा एवं निर्लज्जता दोष ही यमलार्जुनके रूप हैं। कृष्ण कृपा कर यमलार्जुनका भञ्जन कर वे दोष दूर करते हैं।"

—चै० शि० ६।६

१७—वत्सासुर किस अनर्थका रूप है ?

"बालबुद्धिद्वारा उत्पन्न लोभसे जो दुष्क्रिया और परबुद्धिवशवर्त्तिता होती है, वही वत्सासुरका रूप है। कृष्ण कृपा कर उसे दूर करते हैं।"

—चै० शि० ६।६

१८—बकासुर का क्या स्वरूप है ?

"कुटिनाटि, धूर्त्तता और शठतासे उत्पन्न झूठा व्यवहार ही बकासुर है। उसका विनाश नहीं करने से शुद्ध कृष्णभक्ति नहीं होती।"

—चै० शि० ६।६

१९—अघासुर किस अनर्थका रूप है ?

"भूतहिंसा, द्वेषजनित परद्रोह रूप पाप-बुद्धि दूरीकरण ही अघासुर-वध है। यह एक नामापराध है।"

—चै० शि० ६।६

२०—ब्रह्ममोह किस अनर्थका सूचक है ?

"ब्रह्ममोह—कर्म-ज्ञानादि चर्चाद्वारा उत्पन्न सन्देहवाद और ऐश्वर्य बुद्धिसे माधुर्य-की अवमाननाका प्रतीक है।"

—चै० शि० ६।६

२१—धेनुकासुर किस अनर्थका सूचक है ?

"धेनुकासुर-वध—स्थूल-बुद्धि,सद्ज्ञानाभाव, मूढ़तासे उत्पन्न तत्वान्धता या स्वरूप ज्ञान विरोधरूप अनर्थका दूरीकरण है।"

—चै० शि० ६।६

२२—कालियनाग किस अनर्थका प्रतीक है ?

"कालियदमन—अभिमान, खलता, परापकारिता, क्रूरता और जीवोंके प्रति दयाशून्यताका दूरीकरण है।"

—चै० शि० ६।६

२३—दावाग्नि किस अनर्थका सूचक है ?

"दावाग्नि नाश—परस्पर वाद, सम्प्रदायविद्वेष, अन्य देवताओंके प्रति विद्वेष और युद्धादि संघर्ष मात्रमें ही सहयोग आदिका दूरीकरण है।"

—चै० शि० ६।६

२४—प्रलम्ब किस अनर्थका प्रतीक है ?

"प्रलम्ब-बध—स्त्री-लम्पटता, लाभ, पूजा और प्रतिष्ठाका दूरीकरण है।"

—चै० शि० ६।६

२५—दावानल किस अनर्थका सूचक है ?

"दावानल-पान—नास्तिकोंद्वारा धर्म और धार्मिक व्यक्तियोंके प्रति उपद्रवका दूरीकरण है।"

२६—याज्ञिक ब्राह्मणोंकी कृष्ण-अवहेलना किस अनर्थका आदर्श है ?

"याज्ञिक ब्राह्मणोंका कृष्णके प्रति दुर्व्यवहार—वर्णश्रमाभिमानद्वारा उत्पन्न उदासीनता और कर्मजड़ताका प्रतीक है।"

—चै० शि० ६।६

२७—इन्द्रपूजा किस अनर्थका आदर्श है ?

"इन्द्रपूजानिवारण—बहु-ईश्वरवाद बुद्धित्याग और अहंग्रहोपासनाका दूरीकरण है।"

—चै० शि० ६।६

२८—वरुणसे नन्दोद्धार-लीलाका तात्पर्य-द्वारा साधक क्या शिक्षा ग्रहण करेंगे ?

"वरुणसे नन्दोद्धार—वारुणी आदि मद्यों की सेवासे भजनानन्द होता है, इस बुद्धिका दूरीकरण है।"

—चै० शि० ६।६

२९—सर्पग्राससे नन्दमोचन-लीलाका क्या तात्पर्य है ?

सर्प-कवलसे नन्दमोचन—मायावादादि ग्रसित भक्ति-तत्वका उद्धार और मायावादादिका सङ्ग-त्याग है।"

—चै० शि० ६।६

३०—शङ्खचूड़ किस अनर्थका प्रतीक है ?

"शङ्खचूड़-वध—प्रतिष्ठाशा और स्त्रीसङ्ग स्पृहा-वर्जन है।"

—चै० शि० ६।६

३१—अरिष्टासुर-वृष किस अनर्थका-प्रतीक है ?

"अरिष्टावृषासुर-वध—छलधर्मादिके अभिमानसे भक्तिके प्रति अवहेलना-भावका ध्वंस है।"

—चै० शि० ६।६

३२—केशीदैत्य किस अनर्थका आदर्श है ?

"केशी वध—मैं बड़ा आचार्य और भक्त हूँ—यह अभिमान, ऐश्वर्यबुद्धि और पार्थिवाहङ्कारका विनाश है।"

—चै० शि० ६।६

३३—व्योमासुर किस आदर्शका प्रतीक है ?

"व्योमासुर-वध—चौरादि और कपट भक्तोंका सङ्ग-त्याग है।"

—चै० शि० ६।६

३४—दृढ़ताका अभाव कैसा अनर्थ है ? उससे क्या अशुभ होता है ?

"आजके लिए प्रतिकूल विषयको स्वीकार कर लूँ, कलसे विशेष सावधान होऊँगा—ऐसी हृदय-दुर्बलता प्रकाश करनेसे कदापि मंगल नहीं होता। जो विषय भजन-बाधक मालूम हो, श्रीमन्महाप्रभुकी कृपाका अवलम्बन कर उसे तुरन्त ही परित्याग करना चाहिए। दृढ़ता ही साधनका मूल है। दृढ़ता का अभाव होनेपर साधन-कार्यमें एकपद भी अग्रसर होना असंभव है।"

—'साधन', स० तो० ११।५

३५—धर्मध्वजिता क्या एक अनर्थ है ?

"इन्द्रियप्रिय धर्मध्वजियोंका कोई भी परामर्श नहीं सुनना चाहिए।"

—चै० शि० २ य खण्ड ७।१

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोदठाकुर

—+-+—

भगवानसे कृपा-प्रार्थना

न ध्यातोऽसि न कीर्तितोऽसि न मनागाराधितोऽसि प्रभो !
नो जन्मान्तरगोचरे तव पदाम्भोजे च भक्तिः कृता।
तेनाहं बहुदुःखभाजनतया प्राप्तो दशामीदृशीं
त्वं कारुण्यनिधे ! विधेहि करुणां श्रीकृष्ण ! दीने मयि ॥

श्रीशंकर नामक भक्त भगवान श्रीकृष्णसे दीनतापूर्वक प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो ! इस जन्ममें तो मैंने आपका थोड़ा भी ध्यान, नामकीर्तन या आराधन आदि नहीं किया। पूर्व-पूर्व जन्मोंमें भी आपके श्रीचरणारविन्दोंमें भक्तिका सम्बन्ध स्थापित नहीं किया। अतएव मैं अनन्त दुःख भोग करनेका पात्र तो बन ही गया। इसलिए मैं ऐसी दुर्दशाको प्राप्त हुआ हूँ। अतएव हे असीम करुणाके समुद्र श्रीकृष्ण ! आप ही मुझ दीनपर कृपादृष्टि कर दीजिए। उसीसे ही यह दुर्दमीय माया निवृत्त हो जायेगी।

★ (पद्यावलीसे)

★ गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रति ★

जन्म-कर्म-धर्म से थे ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञ बने,
पूर्व पुण्य-पुंजके पवित्र परिणाम थे ।
मुक्ति-मूल जैसे थे 'अभुक्त-मूल' में भी आप,
राजापुर ग्रामके सादर नाम धाम थे ।
'चुनियाँ' की दुनियाके मुनियाँ सगुनिया थे,
श्रेष्ठ साधना की भव्य भावना ललाम थे ।
हुलसी हुई 'हुलसी' माता के पुत्र तुलसी—
तुम आत्माराम दुबेकी आत्माके 'ठाम' थे ॥

'मानस' के मानसके विशेष विज्ञानी और,
राम नाम महिमा के सार थे, प्रसार थे ।
जन्मसे ही मुखमें बत्तीस दाँत, बोले 'राम',
आत्म-ज्ञानी' समझे कि वृथा भूमि भार थे ।
रामके अनन्य भक्त पूर्व जन्मसे ही रहे,
आश्चर्यपूर्ण और अद्भुत अपार थे ।
बारह महीने तक गर्भमें रहे थे, क्योंकि,
बारह ही कलाओंके राम अवतार थे ॥

जन्म क्षण 'राम' बोले, नाम 'रामबोला' पड़ा,
भूतने भविष्यके प्रमाण दिलाये थे ।
'श्रीनरहरि' गुरुके साथ सोरों पधारे तो,
होनहार बिरवाके पात फूट आये थे ।
'राम-नाम' मंत्रसे ही दीक्षित परीक्षित से
'शेष' से 'सनातन' को वेसुध बनाये थे ।
जन्म जन्म हंस बन मानसर मानस में,
भाव भरे भक्त भक्ति भावसे नहाये थे ॥

संस्कृतसे संस्कृत, परिष्कृत विद्वान और,
भक्ति-भाषा-आशा-परिभाषाके प्रसार थे ।
सेवासाधनके अलंकारसे अलंकृत थे,
सुखमय संसारके सजीव शृंगार थे ।
छन्द और प्रबन्धके निबन्धके सुनिर्माता,
नवरस रसकी सरस रसधार थे ।
'श्रावण शुक्ल सप्तमी' में शब्दालंकार भी है,
आजीवन कविताके आप अलंकार थे ॥

तुलसी तुम्हारी राम-कथा पढ़ते हैं किन्तु,
हम रामका पवित्र आदर्श अपनाते नहीं ।
भरतके चरित्रका पाठ करते हैं, नित्य,
अपनेही अपनेको किन्तु अब सुहाते नहीं ।
स्वर्णमृगके कारण ही रामने सहे थे कष्ट,
जानते हैं, लोभसे किन्तु बच पाते नहीं ।
तन-धनसे स्मृतिके उत्सव मनाते किन्तु
मनसे तुम्हारा जन्मोत्सव मनाते नहीं ॥

तुलसी के 'तु' का अर्थ है कि तुम प्रभुराम-
नामके गुलाम और आस-अभिलाष थे ।
तुलसी के 'ल' का अर्थ है कि श्रीलखनलाल,
कोमल कृपालुकी कृपाओंके निवास थे ।
तुलसी के 'सी' का अर्थ है कि माँ सीता,
जग जननीके जन्म-जन्म पग पास थे ।
शब्द शब्द 'तुलसीदास' का था यही अर्थ कि
राम-लखन-सीता तीनोंके तुम दास थे ॥

तुलसी तुम्हारा यदि जन्म नहीं होता, तो न
भक्ति-भावनाके भव्य भाव भर पाते हम ।
धर्म-कर्म मर्म का न ज्ञान ध्यान देते तुम,
तम त्रय ताप, शाप ही न हर पाते हम ।
सरल सुरम्य रम्य रामायण न होती तो,
सुख-सुविधासे न सकर्म कर पाते हम,
रामनाम वैतरणी तरणी न होती यदि,
कलि भव-सिन्धु से न कभी तर पाते हम ॥

—'निर्भय हाथरसी'

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

पंचमधारा (प्रेमारुरुक्षु-पुरुषोंकी गति)

श्रीगुरुदेव और कृष्णकी कृपासे साधक भक्ति-लताका बीज अर्थात् भक्तिके प्रति श्रद्धा-को प्राप्त करता है। यह श्रद्धा-रूप बीज सत्संगमें हरिकथाके श्रवण-कीर्तन रूप जलसे सिंचित होने पर क्रमशः अंकुरित और पल्लवित होकर एक सुन्दर लताका रूप धारण करता है। तदुपरान्त उस भक्ति लतामें सुन्दर-सुन्दर फूल लग जाते हैं और अंतमें उसमें प्रेमरूप मधुर फल उत्पन्न होता है। श्री चैतन्य महाप्रभुजीने श्रीरूपगोस्वामीको एक रूपकके द्वारा इस विषयकी शिक्षा दी है[1]।

साधक पुरुष एक मालीके समान हैं। यह माली अपने हृदय-क्षेत्रमें उक्त भक्ति-बीजका वपन करता है। बीज बोनेके पूर्व खेतको अच्छी तरहसे जोतकर घास आदिको दूरकर उप-युक्त बनाना आवश्यक होता है। भोग, मोक्ष और सिद्धिकी कामनाएँ घासके समान हैं। साधक-माली सद्गुरुके उपदेशसे इन घासोंको दूर कर हृदय-क्षेत्रको साफ करते हैं। यही सत्संगका फल है। प्रेम-साधक अपनेको तृणसे भी अधिक हीन समझेंगे। उन्हें वृक्षसे भी

१—ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव। गुरु कृष्णप्रसादे पाय भक्तिलता बीज॥
माली हइया करे सेइ बीज आरोपण। श्रवण-कीर्तन-जले करये सेचन॥
उपजिया बाड़े लता ब्रह्माण्ड भेदि जाय। विरजा-ब्रह्मलोक भेदि परव्योम पाय॥
तबे जाय तदुपरि गोलोक वृन्दावन। कृष्ण चरणकल्पवृक्षे करे आरोहण॥
ताँहा विस्तारित हइया फले प्रेमफल। इहाँ माली सेचे नित्य श्रवणकीर्तनादि जल॥
यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता। उपाड़े वा छिण्डे तार शुकि जाय पाता॥
ताते माली यत्न करि करे आवरण। अपराध-हस्तीर जैछे ना हय उद्गम॥
किन्तु यदि लतार संगे उठे उपशाखा। भुक्ति-मुक्ति बांछा जत असंख्य तार लेखा॥
निषिद्धाचार कुटीनाटी जीव हिंसन। लाभ-पूजा-प्रतिष्ठादि जत उपशाखागण॥
सेक जल पाइया उपशाखा बाड़ि जाय। स्तब्ध हइया मूलशाखा बाड़िते ना पाय॥
प्रथमेइ उपशाखार करये छेदन। तबे मूलशाखा बाड़ि जाय वृन्दावन॥
प्रेमफल पाकि पड़े माली आस्वादय। लता अवलम्बि माली कल्पवृक्ष पाय॥
ताँहा सेइ कल्पवृक्षेर करये सेवन। सुखे प्रेमफल रस करे आस्वादन॥
एइ त परम फल परम पुरुषार्थ। याँर आगे तृण-तुल्य चारि पुरुषार्थ॥

(चै० च० मध्य, १९ अध्याय)

अधिक सहिष्णु होना चाहिए। साथ ही उन्हें स्वयं मान-प्रतिष्ठा-आदिकी आशाका सर्वथा परित्याग कर सभी जीवोंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करना चाहिए। ऐसा स्वभाव होने पर ही हरिनाम ग्रहण करनेका अधिकार प्राप्त होता है[1]। यही साधनक्षेत्र-परिष्कारका कार्य है। अश्वको वशमें लानेके समान मनको कुछ-कुछ अनुरूप विषयोंमें भुलाकर उसे वशीभूत करना ही कर्तव्य है[2]। इसीका नाम युक्त-वैराग्य है। इसीसे भजनमें सहायता मिलती है। इसके विपरीत शुष्क-वैराग्यसे उतनी सहायता नहीं मिलती।

वह भक्ति-लता श्रवण-कीर्तन-स्मरण आदि जल-सिंचनसे क्रमशः बढ़ने लगती है। भक्ति-लताका यह चिन्मय धर्म है कि वह इस प्राकृत जगतमें सीमित नहीं रहती। वह देखते देखते ही चौदह-लोकमय जड़ ब्रह्माण्डको और उससे भी आगे विरजाको पार करके पुनः ब्रह्मलोकको भेदकर वैकुण्ठमें पहुँच जाती है। अप्राकृत चिन्मय वस्तुका यह जड़ातीत धर्म है। भक्तोंके अल्प आग्रह और प्रयत्नसे ही उनमें स्वरूपज्ञानका उदय हो जाता है जो भक्तकी आत्मा और भक्तिलताको जड़ातीत अपने चिन्मय राज्यमें उपस्थित करता है। क्रमशः वह लता वैकुण्ठके ऊपरी भाग गोलोकमें पहुँचकर श्रीकृष्णके चरणरूप कल्पवृक्षके ऊपर फैल जाती है।

शीघ्र ही उसमें प्रेमरूपी फल भी लग जाता है। इधर माली निरन्तर श्रवणकीर्तन आदि जलसे उस लताको सींचता रहता है। विरजाके पार होने पर लताके नष्ट होनेका किसी प्रकारका भय नहीं रहता। परन्तु जबतक यह लता प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, रूप,रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, पंच-ज्ञानेन्द्रिय, पंच-कर्मेन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथ्वी, जल, तेज, हवा, आकाश, सत्व, रज और तमोमय इस ब्रह्माण्डमें रहती है, तभीतक उसके क्षतिग्रस्त या नष्ट होनेका डर बना रहता है। जड़ातीत भूमि प्राप्त होते ही भक्तिलता अपनी स्वाभाविक महिमा के प्रभावसे अभेद्य और अच्छेद्य होकर ऊर्द्ध्वगामी हो पड़ती है। जबतक भक्तिलता जड़ ब्रह्माण्डमें रहती है, तब तक मालीको दो विषयोंमें विशेषरूपसे सावधान रहना चाहिए। पहली बात यह है कि मालीको सर्वदा सावधान रहना चाहिए, जिससे वैष्णव-अपराध न हो

१—तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
—(शिक्षाष्टक)

वाचोवेगं मनसः क्रोधवेगं जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः सर्वामपीमां पृथ्वीं स शिष्यात्॥ (उपदेशामृत)

२—धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम्। अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत्॥
(भा० ११।०।१६)

जाय। वैष्णव-अपराध[1] एक प्रमत्त हाथीके समान है, जो भक्तिलताको मूलसे उखाड़कर फेंक देता है। निःसङ्गमें भजन तथा साधु-आश्रय—ये दो दृढ़ आवरण हैं। माली इन दोनों आवरणों-के द्वारा भक्तिलताका वैष्णव-अपराधरूप हाथीसे रक्षा करता है। शुद्ध वैष्णवोंके सङ्गसे ये उत्पात दूर रहते हैं। दूसरी सावधानीकी बात यह है कि जिस प्रकार किसी लताके साथ कुछ उपशाखाएँ—जंगली एवं व्यर्थके पौधे ऊग आते हैं तथा मूललताको ढ़ककर स्वयं बढ़ जाते हैं और मूललताको मार देते हैं, उसी प्रकार कुसंग दोषसे भक्तिलताके साथ-साथ विषय भोगकी लालसाएँ, मुक्तिकी कामना, दुराचार, कपटता, शठता, धूर्तता, जीव-जिंसा, स्वार्थ, सम्मान और प्रतिष्ठाकी कामना आदि अनेकानेक उपशाखाएँ हैं[2]। इन उपशाखाओंके रहते हुए श्रवण-कीर्तनरूप जलसे सिंचाई करने पर उपशाखाएँ चारों ओरसे बढ़कर मूलशाखा—भक्ति लताको ढक देती हैं। यहाँ तक कि मूलशाखा क्षीण हो जाती है और बढ़ नहीं पाती। भोग-मोक्षके पक्षपाती कुसंगसे ही ये उपशाखाएँ उत्पन्न होती हैं। कुसंगसे भक्तोंका पतन सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होता है। इसलिए मालीको चाहिए कि वह सद्गुरुके उपदेशसे इन उपशाखाओं-को पैदा होते तुरन्त ही सावधानीके साथ उखाड़ फेंके, जिससे उनकी कोई जड़ तक न रहे और उनके पुनः अंकुरित होनेकी कोई संभावना ही न रहे। ऐसा

१—तृतीय वृष्टिमें सेवापराध और नामापराधका उल्लेख किया गया है। शुद्ध भक्तोंके प्रति अपराधका उपदेशामृतमें इस प्रकार उल्लेख है—

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषैर्न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्।
गंगाम्भसां न खलु बुद्बुदफेनपङ्कैर्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः॥

—स्वभावजन्य नीचजन्मगत दोष, पूर्व दोष, आकस्मिक दोष, बचेखुचे दोष, शरीरगत लंगड़ापन आदि आकार दोष, देहगत स्मार्तविरुद्ध आचार, अनाचार, बुढ़ापा और रोग-जन्य घृण्यावस्था—इन दोषोंको शुद्धभक्तोंमें देखकर दोषारोप करनेसे वैष्णवापराध होता है।

२—असच्चेष्टाकष्टप्रदविकटपाशालिभिरिह प्रकामं कामादिप्रकटपथपातिव्यतिकरैः।
गले बद्ध्वाहन्येऽहमिति बकभिद्वर्त्मपगणे कुरु त्वं फुत्कारानवति स यथा त्वं मन इतः॥
अरे चेतः प्रोद्यत्कपटकुटीनाटीभरखरक्षरन्मुत्रे स्नात्वा दहसि कथमात्मानमपि माम्।
सदा त्वं गान्धर्वागिरिधरपदप्रेमविलसत्सुधाम्भोधौ स्नात्वा स्वमपि नितरां मां च सुखय॥
प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत् कथं साधुप्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयित सामन्तमतुलं यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥
यथा दुष्टत्वं मे दवयति शठस्यापि कृपया यथा मह्यं प्रेमामृतमपि ददात्युज्ज्वलमसौ।
यथा श्रीगान्धर्वाभजनविधये प्रेरयति मां तथा गोष्ठे काक्वा गिरिधरमिह त्वं भज मनः॥

(—श्रीमनःशिक्षायां दासगोस्वामी)

होने पर भक्तिकी बेल सहज ही चिद्धाम वृन्दावनमें पहुँच जाती है। वृन्दावनमें व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके श्रीचरणकमलरूपी कल्पवृक्षपर फैलकर प्रेमरूप फल उत्पन्न करती है। प्रेम-फल पककर गोलोक-वृन्दावनमें गिरने पर माली यहाँ रह कर ही प्रेम-फलका आस्वादन करता है और शीघ्र ही भक्तिलताके सहारे चितकणस्वरूप माली श्रीकृष्णचरणरूप कल्प-वृक्षको पा लेता है। वहाँ उपस्थित होकर माली कल्पवृक्षकी सेवा करते हुए परमपुरुषार्थ स्वरूप प्रेम-फलका नित्य आस्वादन करने लगता है।

प्रेमारुरुक्षु अर्थात् प्रेमप्राप्तिकी इच्छावाले साधक इसी प्रणालीसे श्रीहरिनामका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करते-करते निर्मलचित्त होने पर भावावस्था लाभ करते हैं। भावके उदित होनेके साथ-साथ रसयोग्यता भी उदित होती है। कृष्णलीलामें सभी रस ही परम मधुर होते हैं। शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य—ये सभी रस अपने-अपने लिए परम उपादेय हैं। अधिकारी भेदसे भक्तगण उन-उन रसोंमें निविष्ट होते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाके अनुसार मधुर रस ही भक्तोंके लिए उपास्य है। इस रसमें श्रीराधिकाके अनुगत नहीं होने से रसास्वादन नहीं होता। सच्चिदानन्द-तत्व ही—परब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण—सच्चित् स्वरूप हैं तथा राधाजी—आनन्दरूपिणी हैं। राधाकृष्ण एक तत्व हैं। रसास्वादनके लिए यह एक ही तत्व दो रूपोंमें प्रकटित है। राधा और चन्द्रावली दूसरी सभी गोपियोंसे श्रेष्ठा हैं। इन दोनोंमें भी राधिकाजी सर्वतोभावेन श्रेष्ठा हैं[१]। (क्रमशः)

१—तत्रापि सर्वथा श्रेष्ठे राधाचन्द्रावलीत्युभे। तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका॥
महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी। ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसी॥
यस्याः सर्वोत्तमे यूथे सर्वसद्गुणमण्डिताः। समन्तान्माधवाकर्षविभ्रमाः सन्ति सुभ्रुवः॥
तास्तु वृन्दावनेश्वर्याः सख्यः पञ्चविधा मताः। सख्यश्च नित्यसख्यश्च प्राणसख्यश्च काश्चन। प्रियसख्यश्च परमप्रेष्ठसख्यश्च विश्रुताः॥ —(उज्ज्वले श्रीरूप)

मुरलीकी करामात

जा दिन तें मुरली कर लीनी।
ता दिन तें स्रवननि सुनि सुनि सखि ! मनकी बात सबै लै दीनी॥
लोक बेद कुल लाज कानि तजि, औ मरजाद बचन मिति खीनी।
तब ही तें तन सुधि बिसराई, निसि दिन रहति गुपाल अधीनी॥
सरद सुधा निधि सरद अंस ज्यौं, सींचति अमी प्रेम-रस भीनी।
ता ऊपर सुभ दरस सूर प्रभु, श्री गुपाल लोचन गति छीनी॥

(सूरदासजी)

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म-लीला कहाँ हुई ?

अधिकांश लोगोंकी यही धारणा है कि स्वयं भगवान श्रीकृष्णकी जन्म-लीला मथुरामें कंस-कारागारमें हुई थी। किन्तु यह विचारणीय प्रश्न है कि यह बात कहाँ तक शास्त्र-युक्तिसंगत और सत्य है। कंस-कारागारमें भगवान श्रीकृष्ण चतुर्भुज रूपसे प्रकट हुए। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

'तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं
शंखगदाद्युदायुधम्।'

यहाँ यह विचार करनेका विषय है कि क्या कोई बालक चतुर्भुजरूप धारणकर शंखचक्रगदापद्मादियुक्त होकर जन्म ले सकता है? अतएव यह स्पष्ट है कि भगवान श्रीकृष्णकी मथुरामें आविर्भाव-लीला मात्र हुई थी, न कि जन्म-लीला। वसुदेवजीने मंत्र-शक्तिके प्रभावसे भगवान वासुदेवको हृदयमें धारण किया और उन्होंने दीक्षाद्वारा भगवानको देवकीके हृदयमें आविर्भाव कराया। वे भगवान देवकीजीके हृदयमें प्रकट होकर शोभा पाने लगे। वे भाद्रमासके कृष्णाष्टमी तिथिके मध्यरात्रिमें श्रीदेवकीजीके हृदयसे सूतिकागृहमें उनकी शय्यापर आविर्भूत हुए। ठीक इसी समय गोकुलमें भी श्रीयशोदाजीके गर्भसे स्वयं भगवान पूर्ण अवतारीपुरुष द्विभुज रूपधारी श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण किया—

गर्भकाले त्वसम्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ।
देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा॥
(हरिवंश-पुराण)

गोकुलमें श्रीनन्दपत्नी यशोदाके जुड़वें बच्चे हुए। योगमाया स्वयंरूप श्रीकृष्णके साथ-साथ हुई थीं, जिनको लेकर वसुदेवजी मथुरा आये थे—

नन्दपत्न्यां यशोदायां मिथुनं समपद्यत।
गोविन्दाख्यः पुमान् कन्या साम्बिका मथुरां गता॥
(हरिवंश पुराण)

जब देवकीजीने भगवान वासुदेवसे अपना चतुर्भुजरूप गोपन करनेके लिए प्रार्थना की, तब स्वयं भगवान लीला-पुरुषोत्तम द्विभुज-रूपधारी यशोदानन्दन श्रीकृष्ण अपनेमें अपने वैभवप्रकाश चतुर्भुजधारी श्रीवासुदेवको आत्मसात् कर वहाँ प्रकट हो गये—

वसुदेवसुतः श्रीमान् वासुदेवोऽखिलात्मनि।
लीनो नन्दसुते राजन्! घने सौदामिनी यथा॥
(श्रीकृष्ण-यामल)

श्रीवृहत्वैष्णवतोषणीमें भी श्रील सनातन गोस्वामी कहते हैं—

यदा स्वाविर्भूतचतुर्भुजरूपाच्छादनाय श्रीदेवकीप्रार्थनम् तदा यशोदासुतस्य द्विभुजरूपस्य तद्रूपाच्छादनपूर्वकाविर्भावस्तत्रासीदिति गम्यते।

अर्थात् जब भगवान वासुदेव जो चतुर्भुज रूपधारी थे, उनसे देवकीजीने अपने रूप-गोपन करनेकी प्रार्थना की, तब यशोदाके नित्यपुत्र स्वयं भगवान द्विभुजरूपधारी श्रीकृष्ण अपने चतुर्भुज रूपका गोपन कर वहाँ प्रकट हो गये।

श्रीनन्दपत्नी श्रीयशोदाजीका एक और नाम देवकी भी था। अतएव उनका वसुदेवजी-की पत्नी देवकीसे सखीत्व हुआ था—

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च।
अतः सख्यमभूत्तस्याः देवक्यां शौरिजायया॥
(हरिवंश-पुराण)

अतएव भागवतके 'देवक्यां देवरूपिण्यां' श्लोक द्वारा स्वयं भगवान श्रीकृष्णके यशोदाके गर्भसे प्रकट होनेकी बात गूढ़ रूपसे बतलाई गई है—

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।
आविरासीत् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥
(भा० १०।३।८)

जब योगमाया देवी स्वयं भगवान श्रीकृष्णके साथ प्रकट हुई, तब यशोदाजी लीलाशक्ति योगमायाके प्रभावसे गाढ़ निद्राके वशीभूत हो गई और वे यह न जान सकीं कि उन्हें पुत्र हुआ है कि कन्या हुई है—

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥
(भा० १०।३।५३)

नित्यकाल ही श्रीकृष्ण यशोदाके पुत्र हैं; अतएव प्रकट-लीलामें वे यशोदाजीके गर्भसे अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे आविर्भूत हुए । अतएव श्रुतियोंमें श्रीकृष्णके लिए आया है— 'यशोदागर्भसंभवम् ।'

अतएव स्वयं भगवान श्रीकृष्णकी जन्म-लीला गोकुलमें ही हुई थी । देवकीजीके हृदयसे भगवान श्रीकृष्ण अंश रूपसे प्रकट हुए न कि पूर्ण रूपसे—

'अथाहमंशभागेन देवक्यां पुत्रतां शुभे प्राप्स्यामि ।'
(भा० १०।१।१९)

इस श्लोककी टीकामें श्रीसनातन गोस्वामीजी लिखते हैं—

"अंशभागेन अंशांशेन पुत्रतां पुत्रभावं प्राप्स्यामि न तु सत्रांशेनेत्यतः सा देवकी मयि वात्सल्यमैश्वर्य-भावमयं करिष्यतीत्यर्थः । तेन भावान्तरशून्यं सम्पूर्णमेव वात्सल्यसुखं श्रीयशोदायामेव प्राप्स्यामीति द्योतितम् ।"

अर्थात् मैं अंशांशसे देवकीका पुत्रत्व स्वीकार करूँगा किन्तु श्रीयशोदाजीका पुत्रत्व सम्पूर्णरूपसे ग्रहण करूँगा । या देवकीजी ऐश्वर्यभावमयी वात्सल्य प्राप्त करेंगी और यशोदाजी विशुद्ध माधुर्यमयी वात्सल्य प्राप्त करेंगी ।

श्रीनन्दमहाराजने ही श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव मनाया था—

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जात ह्लादो महात्मनः ।
(भा० १०।५।१)

श्रीकृष्ण-यामलमें कहा गया है—

कृष्णोऽन्यो यदुसंभूतो यः पूर्णः सोऽस्त्यतः परः ।
वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिद् नैव गच्छति ॥
द्विभुजः सर्वदा सोऽत्र न कदाचित् चतुर्भुजः ।
गोप्यैवया युतस्तत्र परिक्रीड़ति नित्यदा ॥

अर्थात् यदुवंशमें उत्पन्न कृष्ण स्वयं भगवान श्रीकृष्णसे पृथक् हैं । जो पूर्णतत्व एवं अनादिरादि मूल-पुरुष हैं, वे वृन्दावन छोड़कर कहीं भी नहीं जाते । वे सर्वदा ही द्विभुज हैं, कदापि चतुर्भुज नहीं हैं । वे गोपियोंके साथ नित्यकाल ही श्रीवृन्दावनमें क्रीड़ा करते हैं । श्रीब्रह्मसंहितामें भी कहा गया है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

यहाँ 'गोविन्द' शब्द स्वयं भगवान् द्विभुजरूपधारी गौचारण करनेवाले मुरलीवादनकारी श्रीकृष्णको ही लक्ष्य कर कहा गया है, न कि चतुर्भुजरूपधारी श्रीवासुदेवके लिए । ये ही गोविन्द सर्व-अवतारी, अनादि, आदि-पुरुष और सर्वकारणकारण हैं ।

—श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

प्रचार-प्रसङ्ग

श्रीश्रीझूलनयात्रा-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २७ श्रावण, १३ अगस्त, बृहस्पतिवारसे लेकर ३१ श्रावण, १७ अगस्त, सोमवार श्रीबलदेव-पूर्णिमातक श्रीश्रीराधाविनोद विहारीजीका झूलन महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप और श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया है । अन्यान्य शाखा मठोंमें भी यह उत्सव विशेष उत्साहके साथ मनाया गया है । श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें झूलनकी भव्य झाँकियाँ प्रतिदिन नित्यनूतन रूपसे प्रस्तुत की गईं । सभामण्डप, हिंडोला और श्रीमन्दिरको नानाप्रकारके रंग-बिरंगे वस्त्र, केलेके वृक्ष, तोरण, आम्र-पल्लव, बिजलीके प्रकाश द्वारा सजाया गया था । प्रतिदिन असंख्य दर्शनार्थी आया करते । विराट संकीर्त्तन और प्रवचन आदि नित्यप्रति होते थे । श्रीझूलनयात्रा-महोत्सव मनाने का गूढ़ तात्पर्य यही है कि श्रीश्रीराधाकृष्णकी अप्राकृत लीलाको क्रमशः हमारे विषय-विमूढ़ हृदयमें उद्दीपना कराकर उस चिन्मयी और प्रपंचातीत लीलामें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त किया जाय और क्रमशः भगवानके चरणोंमें प्रीति बढ़ाकर मायाके साम्राज्यसे उत्तीर्ण हुआ जाय । इसी गूढ़ तात्पर्यकी ओर लक्ष्य कर ही शुद्ध कृष्णभक्त लोग इस अनुष्ठानका प्रतिवर्ष पालन किया करते हैं ।

श्रीश्रीबलदेव-पूर्णिमा

गत ३१ श्रावण, १७ अगस्त, सोमवारको पूर्णिमा-तिथिमें श्रीकृष्ण भगवानके अग्रज एवं प्रकाश-विग्रह श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके मूल मठ और शाखा मठोंमें उपवास, संकीर्त्तन, भाषण और भागवत-पाठके माध्यमसे सुचारु रूपसे पालित हुई है । उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें शामको एक धर्मसभाका आयोजन किया गया जिसमें श्रीनृत्यकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीकुंजविहारी ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने भाषण दिये । अन्तमें सभापति पूजनीय त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीबलदेव प्रभुके सम्बन्धमें बड़ा ही मार्मिक और शास्त्र-सुसिद्धान्तपूर्ण भाषण प्रदान किया। सभा-समाप्ति पर श्रीमहामंत्रका कीर्त्तन किया गया ।

श्रीश्रीजन्माष्टमी-व्रत और श्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत १७ भाद्र, २४ अगस्त सोमवारके दिन समितिके मूल-मठ और सभी शाखा मठोंमें स्वयं भगवान लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका जन्माष्टमी-व्रतोपवास भागवत-पाठ, हरिसंकीर्त्तन, प्रवचन और प्रदर्शनीके माध्यमसे पालित हुआ है । उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें सवेरे ६ से लेकर मध्यरात्रि १२ बजे तक श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण और बीच-बीचमें हरिकीर्त्तन हुआ । सवेरे मंगलारति, कीर्त्तन आदिके पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने भागवत-पाठ प्रारम्भ किया । उनके पश्चात् श्रीनृत्यकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीरामेश्वरप्रसाद सक्सेना, श्रीश्यामसुन्दर चतुर्वेदी, श्रीकुंजविहारी ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्म-

चारी आदि वक्ताओंने पारायण किया। सायंकालको संध्यारतिके पश्चात् तुमुल हरि-संकीर्त्तन हुआ। उसके पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीकृष्ण-लीलाका रहस्य, श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ता, सर्व-अवतारीत्व और अखिलरसामृतसिन्धुत्व आदि विषयोंपर बड़ा ही मार्मिक और हृदयग्राही प्रवचन दिया। इसके पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्ण-जन्मप्रसङ्ग और श्रीकृष्ण जन्माष्टमी मनानेके निगूढ़ तात्पर्यको सर्व-साधारणके निकट बोधगम्य भाषामें व्यक्त किया। मध्यरात्रिमें आरतिके पश्चात् उप-स्थित सभी सज्जनों और महिलाओंको महाप्रसाद वितरण किया गया। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसरपर उपस्थित वैष्णवों एवं सज्जनोंको नानाप्रकारके सुस्वादु महा-प्रसादका सेवन कराया गया। सायंकालको छायाचित्रके माध्यमसे श्रीश्रीगौर-लीलापर पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने हृदयग्राही वक्तृता प्रदान की।

श्रीसमितिके आचार्य-महाराज द्वारा बिहारमें प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति-आचार्य पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज अपने साथ ५-७ ब्रह्मचारियोंको लेकर १४।८।७० को बिहार प्रान्तके संथाल परगनाके अन्तर्गत जारमुण्डी ग्रामके विशिष्ट सज्जनोंके आग्रहसे वहाँ पधारे। तत्रस्थ सज्जनोंने श्रीआचार्य महाराजकी भावभीनी अभ्यर्थना की। श्रीअमूल्यरतन गणके गृहमें पूज्यपाद स्वामीजीने शुभ-पदार्पण किया। शा-मको आयोजित एक विराट धर्म-सभामें पूज्य-पाद आचार्य महाराजजीने सभापति आसन ग्रहण कर "सनातन-धर्म और उसका दूसरे धर्मोंसे वैशिष्ट्य"—इस विषयपर एक सार-गर्भित भाषण प्रदान किया। पूजनीय स्वामी-जी महाराजने पाश्चात्य दार्शनिकोंके भ्रमपूर्ण विचार, उनकी आत्माके सम्बन्धमें अनुसन्धि-हीनता, विचारोंका खोखलापन, और यथार्थ दर्शन-अभाव आदि विषयोंपर सुन्दररूपसे प्रकाश डाला। उन्होंने वर्तमान तथाकथित मनीषियोंकी यथार्थ शास्त्रदर्शिताके अभाव और शास्त्रीय परिभाषाओंके दुरुपयोगके बारेमें भी बतलाया। पूजनीय स्वामीजीने उक्त सज्जनके गृहमें २-३ और भागवतपर प्रवचन किया। तत्पश्चात् निम्नलिखित सज्जनोंके गृहमें भी भागवत-पाठ किया— (१) श्रीभूधर चन्द्र गण, (२) श्रीसूर्यकुमार मोदी, (३) श्रीह-रिबोल कम्पनीके मालिक, (४) ग्राम-प्रधान (५) श्रीआदित्यनाथ गण (६) श्रीशरच्चन्द्र गण, (७) श्रीश्रीनिवास गण और (८) श्रीना-रायणचन्द्र गण। यह ग्राम वैद्यनाथ धामके निकट है।

यहाँसे प्रस्थान कर पूज्यपाद आचार्य महाराजने धाधिकाके निवासी श्रीरसिकरंजन दासाधिकारीके गृहमें शुभ-पदार्पण किया। वहाँ श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी और श्रीनन्दोत्सव बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया। वहाँसे विदा होकर २६-८-७० को संथाल परगनाके दूमका शहरमें पहुँचे। वहाँ श्रीनिर्मलकान्ति महोदय (जो वहाँके एक विशिष्ट एडवोकेट हैं) के गृहमें भागवत-प्रवचन हुआ। सभामें स्थानीय अस्पतालके सिविल सर्जन श्री बी० एन० दूबे, जिला जज पं० श्री अंगद ओझा,

बहुतसे वकील और एडवोकेट तथा अनेकानेक सज्जन लोग उपस्थित हुए थे। पूज्यपाद स्वामीजी महाराजने श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धसे निमि महाराज-नवयोगेन्द्र संवादका पाठ कर उपस्थित सज्जनोंको धर्म-विषयमें जो कुछ संशय थे, उनका भली प्रकारसे निराकरण किया। वहाँ कुछ दिन शुद्धाभक्ति-का प्रचार कर वे आजकल बिहार प्रान्तके बारहमसिया आदि स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

—निजस्व संवाददाता।

ग्रन्थालोचन

'श्रीस्तवरत्ननिधिः'—

संग्राहक एवं प्रकाशक—श्रीपुरुषोत्तमदास, ११७, गोपीनाथ घेरा, पो०-वृन्दावन (मथुरा) उ० प्र०

हिन्दी-भावाटीकाकार—महाकवि श्रीवनमालीदास शास्त्री

पृष्ठ संख्या ३०० (डिमाई आठ पेजी) सजिल्द मूल्य रु० ५.५० + डाकखर्च १.६० पै०

प्रस्तुत ग्रन्थ—श्रीब्रह्मा, श्रीसत्यव्रत मुनि, श्रीजयदेव, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीजीव, श्रीरघुनाथदास, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, श्रीकृष्णदास कविराज, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर प्रभृति परम रसिक गौड़ीय-वैष्णव-महाजनों द्वारा रचित—श्रीगुरुदेव, श्रीगौराङ्ग महाप्रभु, उनके परिकर, श्रीकृष्ण, श्रीमती राधिका, श्रीवृन्दावन, गोवर्द्धन, यमुनाजी, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, तुलसी एवं मथुरा आदिके रससे छलकते हुए स्तवों एवं अष्टकालीयलीला, दामोदराष्टक, 'हरेकृष्ण'—महामंत्रकी विस्तृत रसमयी व्याख्याओंका अभूतपूर्व संग्रह है। यह संग्रह इतना सफल और सुन्दर है कि व्रज-प्रेमके उपासकोंको अपने भावोंके अनुरूप दैनन्दिन पाठोपयोगी सभी स्तव-स्तोत्र इस एक ही ग्रन्थमें उपलब्ध हो सकेंगे। तदतिरिक्त महाकवि श्रीवनमाली-दास शास्त्रीकी सरल, सरस एवं सुमधुर हिन्दी-भाषाटीकाने इस ग्रन्थकी उपयोगिताको द्विगुणित कर दिया है। संस्कृत प्रेमियों एवं वैष्णवोंके लिए तो यह ग्रन्थ अवश्य संग्राह्य है।

—संपादक

★

श्रीश्रीराधाष्टमीका व्रत-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २३ भाद्र, ९ सितम्बर, बुधवारके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल-मठ और सभी शाखा मठोंमें श्रीश्रीराधाष्टमी-तिथिका व्रतोत्सव संकीर्त्तन, पाठ, भाषण और प्रवचन-के माध्यमसे बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। यह तिथि श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके लिए परम आदरणीया और परम उपास्या हैं क्योंकि श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें सर्वतो-भावेन श्रीमती राधिकाजीके आनुगत्यकी सर्वप्रधानता है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस विशेष कार्यक्रमका आयोजन किया गया था। सवेरे ५ बजेसे लेकर रातके ११ बजेतक यह कार्यक्रम चलता रहा। प्रातः-काल मंगलारतिके पश्चात् श्रीगुरु-वैष्णव-पंचतत्व वन्दना आदिके सम्पन्न होनेपर श्रीमती राधिकाजीकी महिमा एवं उनके श्रीचरणकमलोंमें सकातर प्रार्थनामूलक गान, गीति और पदावलियोंका कीर्त्तन किया गया। उसके पश्चात् श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीराधा-तत्वके विषयमें पाठ हुआ। उसके पश्चात् गोस्वामियोंद्वारा विरचित श्रीराधा-स्तोत्रा-वलीका पाठ हुआ और उपनिषदों, पुराणों, आगमों आदिसे श्रीराधातत्वकी विशद आलोचना की गई। दोपहरको श्रीराधा-सहस्रनामपाठ हुआ तथा श्रीश्रीराधाकृष्णका पंचामृत, जमुनाजल आदिसे महाभिषेक हुआ। मध्याह्न भोगराग और आरतिके पश्चात उपस्थित वैष्णवों तथा सज्जनोंको विविध प्रकारके सुस्वादु महाप्रसादका सेवन कराया गया। अपराह्न ४ बजेसे कीर्त्तन-प्रवचनका कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ हुआ। सायंकाल ६ बजे से ७ बजेतक श्रीव्रजविलासका पाठ किया गया। संध्यारति और विराट हरिसंकीर्त्तनके पश्चात् विभिन्न वक्ताओंने श्रीराधा-तत्वके सम्बन्धमें बड़ा ही हृदयग्राही और ओजस्वी प्रवचन दिया। अन्तमें पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने श्रीराधिकाजीकी श्रेष्ठ महिमासूचक, अत्यन्त हृदयग्राही, शास्त्रसुसिद्धान्तपूर्ण और रसपरि-पूर्ण वक्तृता प्रदान की। सभाके अन्तमें सुमधुर हरिकीर्तनके पश्चात उस दिनके कार्यक्रमकी इतिश्री की गई।

अस्मदीय श्रीश्रील गुरुपादपद्म नित्य-लीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने कुछ वर्ष पूर्व श्रीराधाष्टमीपर एक वक्तृता प्रदान की थी। उसका सारांश यह है—"जो व्यक्ति श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं, उनके लिए श्रीमती राधारानीजीके आनुगत्यको छोड़कर और कोई गति नहीं है। दार्शनिकोंका कहना है—'शक्तिशक्तिमतोरभेदः'। सभी शक्तियाँ श्रीमती राधाजीसे ही उत्पन्न हुई हैं। उमा, लक्ष्मी, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि सभी श्रीमती राधिकाजीके चरणकमलोंसे ही हुई हैं। राधिकाजी सभी शक्तियोंकी मूल हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी श्रीराधाकृष्णके मिलित स्वरूप हैं। श्रीमती राधारानीजीका कृष्णके साथ एक प्रकारका वाम्य भाव है, जो उनकी सेवा-वैचित्र्यकी वृद्धि करता है। श्रीकृष्णके साथ राधिकाजीका एकबार मान हो गया, जिससे कृष्ण अत्यन्त दुःखित होकर चले गये एवं श्रीराधाजीकी चिन्तामें विभोर होकर तन्मय हो गये। उनकी अङ्गकान्ति विलुप्त होकर श्रीमती राधाजीकी अङ्गकान्तिको वे प्राप्त हो गये। जो व्यक्ति विप्रलम्भ रसमें उन्नततम भजन करते हैं, वे लोग प्रायः 'कृष्ण-के साथ राधारानीजीके वियोग' की चिन्ता करते हैं। किन्तु श्रीलप्रभुपाद आदि श्रीरूपा-नुग महाजन लोग 'राधिकाजीसे कृष्णके वियोग' की चिन्ता करते हैं। राधिकाजी कृष्ण विरहमें दुःखिता, मर्माहता हैं—ऐसा साधारण लोग चिन्ता करते हैं। किन्तु श्रील प्रभुपाद आदि श्रीराधानुगत श्रीरूपानुग महा-जन लोग इसके विपरीत हैं। श्रीचैतन्य महा-प्रभुजीने इसी विप्रलम्भ रसका ही प्रचार किया है और शिक्षा दी है।"

—निजस्व संवाददाता